सा विद्या या विमुक्तये' और पॉलो फ्रेरे

शैलेन्द्र कुमार वर्मा*
नन्दा द्विवेदी**

शिक्षा जीवन का सम्पूर्ण शास्त्र है। भारत में शिक्षा और ज्ञान के महत्व को प्राचीन काल से ही समझा गया है। वैदिक ऋषियों ने अविद्या को मृत्यु तुल्य माना है; और ज्ञान को जीवन। 'ज्ञानम् तृतीयं मनुजस्य नेत्रम' द्वारा इसे 'तृतीय नेत्र' की संज्ञा दी गयी है जिसके द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को सर्वांगीण रूप से देखा जा सकता है। यह बाहर से भीतर को भरने की प्रक्रिया मात्र नहीं है, अपितु आंतरिक और बाह्य स्थितियों की परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया की प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य अपने आंतरिक और बाह्य परिवेशों में सामंजस्य स्थापित करना सीखता है। शिक्षा ही व्यक्ति में आत्मिक ऊर्जा का संचय करती है। इसी के माध्यम से ज्ञान–पिपासा के साथ विचार, संस्कार एंव संयम का आविर्भाव होता है। यह व्यक्ति के जीवन को तार्किक बनाती है। यह वह दर्पण है जिसमें व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं के प्रतिबिम्ब को देखता है। स्वामी विवेकानंद जी ने शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है; और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी जब तक कि भारत में जनसाधारण को एक बार भली–प्रकार से शिक्षित नहीं कर लिया जायेगा।'

गाँधी जी ने कहा था – 'मात्र साक्षरता या शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य नहीं बनाती, उसके सामने जीवन के लिए 'शिक्षा' ही लक्ष्य होना चाहिए। गांधी जी के उक्त कथन में यह निहित है कि शिक्षा जीवन के लक्ष्य को तभी प्राप्त कर सकते है; जब उसे सामाजिक उत्थान के उद्देश्य से जोड़ा जाये। शिक्षा को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ने वाले महान शिक्षा शास्त्रियों कुम्बस राइमर और इवान इलिच, जिन्होंने अपनी पुस्तकों 'वर्ल्ड एजुकेशनल क्राइसिस' (1968), 'स्कूल इज डेड' (1971), लीग सोसाइटी' (1973) के माध्यम से समाज की समस्याओं को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया परन्तु पॉलो फ्रेरे की 'पेडागॉजी आफ़ दि आप्रेस्ड' (1972) ने शिक्षा जगत में जो हलचल पैदा की, उससे समाज के उस अन्धेरे पक्ष से परदा उठ गया, जिसे दुनिया जानते हुए भी अनभिज्ञ थी।

जीवन परिचय :

पॉलो रिगेलस नेवेस फ्रेरे का जन्म 19 सितम्बर 1921 में दक्षिण अमेरिकी देश ब्राजील के 'रेसिफे' नामक नगर में हुआ था। जव सन् 1929 में विश्व में आर्थिक मंदी की शुरुआत हुयी, तब आर्थिक तंगी के कारण उनका परिवार 'रेसिफे' नगर छोड़कर 'जोबाटाओं' (ग्रामीण क्षेत्र) में बस गया। यहीं पर फ्रेरे का वचपन वीता। वचपन में फ्रेरे ने सामंतवादी, पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, नस्लवादी और फासीवादी उत्पीड़नों का अलग–अलग तरीके से सामना किया। अपनी दस वर्ष की अवस्था को फ्रेरे ने 'कनेक्टिव व्याय' की संज्ञा देते हुए लिखा है कि– 'मेरे ऐसे भी दोस्त थे जो

* एसिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
** प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र विभाग, जीवन दीप महिला कालेज, वाराणसी।

मुझसे कम खाते थे और मुझसे ज्यादा फटे पुराने कपड़े पहनते थे। मेरे ऐसे भी दोस्त थे जो मुझसे ज्यादा खाते थे और बेहतर कपड़े पहनते थे। इन दोनों परिस्थितियों को देखने का मुझ पर गहरा असर पड़ा। मुझे लगा कि मेरे समाज में ही कोई न कोई बुनियादी गड़बड़ी है।..... मेरी माँ ने मुझे सिखाया था कि ईश्वर बहुत अच्छा है; इस लिये मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि जो वर्गभेद है; उसके लिए न ईश्वर को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है; और न नियति को। हाँलाकि इसका कोई संतोषजनक कारण मैं नहीं बता सकता। 11 वर्ष की आयु में मैंने यह शपथ ली कि दुनिया से भूख को कम करने के लिए हर संभव प्रयास करूँगा।' (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र पुस्तक से साभार)

उस समय ब्राजील में चल रहे क्रांतिकारी जन–आंदोलनों से प्रभावित होकर फ्रेरे भी स्वाधीनता और समाजवाद का स्वप्न देखने लगे तथा अल्पतंत्र एवं साम्राज्यवाद के विरोधी हुए, जिसके परिणामस्वरूप ब्राजील के सैनिक शासकों ने उन्हें 1964 में 20 वर्षों के लिए देश निकाला कर दिया। इस समय में वे सेण्टियागों (1964–69) कैम्ब्रीज, मास्चेस्ट्स (1989–70) स्वीट्जरलैण्ड (1970–79) में रहकर शिक्षक एवं समाजसेवक के रूप में कार्य किया और साथ ही 'वर्ल्ड कौंसिल ऑफ चर्चेज' के सदस्य के रूप में विभिन्न देशों की अनेक यात्रायें की। 16 वर्ष के बाद 1980 में पुनः ब्राजील वापस आये तथा 1988 में शिक्षा मंत्री का पद स्वीकार किया। सन् 1997 में 76 वर्श की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया।

फ्रेरे का शिक्षा दर्शन :

फ्रेरे के शिक्षा दर्शन में अध्यात्मवाद, अस्तित्ववाद, साम्यवाद, ऐतिहासिक हेगलीयद्वन्द्व और दृश्य प्रपंचशास्त्र (फेनोमिनोलॉजी) का समावेश है। सभी प्राणियों में प्रेम भावना एंव मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रति आकृष्ट होने में, वह ईसामसीह के विचारों से प्रभावित हुए। उनका कहना था कि 'मुझे ईसामसीह के उस आक्रोश को समझने में मदद मिली, जिसके साथ उन्होंने कर वसूलने वालों को गिरजाघर से बाहर निकाल दिया था' (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र, पृष्ठ 12)। फ्रेरे का बुद्धिजीवी मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट होना ही उनके जीवन की नयी दिशा थी। 'मैं अपना निर्माता स्वयं हूँ' जैसे वक्तव्यों की उन्होंने आलोचना की और यह स्पष्ट किया कि ''शहर के जिन कोनों में तथाकथित स्वनिर्मित लोग रहते हैं; वहाँ बहुत से अनाम व्यक्ति भी निरक्षरता के कारण दयनीय दशा में समाज की उत्पीड़क व्यवस्था में छिपे हैं; इसके लिए 'चुप्पी की संस्कृति' को तोड़ना होगा।''

फ्रेरे उत्पीड़न की स्थिति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'कोई भी स्थिति, जिसमें 'क' वस्तुपरक रूप से 'ख' का शोषण करता है या उसकी आत्म–अभिपुष्टि (सेल्फ–अफर्मेशन) में जानबूझ कर बाधा पहुँचाता है, उत्पीड़न की स्थिति है। इस स्थिति में हिंसा स्वतः ही अंतर्निहित रहती है, भले ही उसे मिथ्या उदारता से मधुर बनाया जाता हो; क्योंकि यह स्थिति मनुष्य बनने के सत्तामूलक और ऐतिहासिक कर्तव्य में बाधा उत्पन्न करती है। उत्पीड़न का सम्बंध स्थापित होते ही हिंसा आरंभ हो चुकी होती है।.....हिंसा का आरम्भ वे करते हैं, जो

उत्पीड़न करते हैं, शोषण करते हैं, जो दूसरों को मनुष्य नहीं मानते। इसका आरंम्भ वे नहीं करते जो उत्पीड़ित हैं; शोषित हैं; जिन्हें मनुष्य नहीं माना जाता। मनमुटाव वे नहीं फैलाते जो प्रेम से वंचित हैं; बल्कि वे फैलाते हैं, जो प्रेम नहीं कर सकते क्योंकि वे स्वंय से प्रेम करते हैं।..... वल प्रयोग वे नहीं करते, जो बलशालियों की प्रबलता के अधीन निर्बल बना दिये गये हैं; बल प्रयोग उन्हें निर्बल बनाने वाले बलशाली करते हैं (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र, पृष्ठ 36)।

फ्रेरे ने अपने निर्वासन काल में लिखी पुस्तक 'पेडागॉजी ऑफ दि अप्रेस्ड' (उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र 1970) में चिली, क्यूबा, निकारगुआ, पुर्तगाल आदि देशों में साक्षरता कार्यक्रमों के दौरान श्रमिकों एंव मध्यवर्गीय लोगों की प्रतिक्रियाओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवलोकन करने के उपरान्त शिक्षा के विशय में कहा कि ''इस शिक्षाशास्त्र का निर्माण उत्पीड़ितों की (चाहे वे व्यक्ति हों या समूचे जनगण) के लिए नहीं बल्कि उनके साथ और उनकी मनुष्यता की पुनर्प्राप्ति के लिए जारी अनवरत संघर्ष में किया जाना आवश्यक है। यह विचार करने की वस्तु बनाता है और उस विचार के जरिये अपनी मुक्ति के लिए किए जाने वाले संघर्ष में उनकी आवश्यक समानता को संभव बनाता है और इसी संघर्ष में यह शिक्षा शास्त्र निर्मित और पुननिर्मित होगा।''

फ्रेरे के शैक्षिक दर्शन में यथार्थवाद का समावेश प्रतिरूपित होता है। ओड़ के अनुसार ''यथार्थवाद की मान्यता है कि यथार्थ जगत में परिवर्तन लाना मनुष्य के वश की बात नहीं है। अतः उसके पास, इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता है कि वह वास्वतिक जगत के साथ, अपने आप का सामन्जस्य स्थापित कर सकें। सुसमंजित व्यक्ति वह है, जो जगत की कठोरता से पलायन नहीं करता, अपितु, उसके साथ सामन्जस्य स्थापित करता है।''

फ्रेरे का चिंतन इस बात का द्योतक है कि समाज की उत्पीड़क व्यवस्था प्राकृतिक देन नहीं है; यह उत्पीड़ितों द्वारा स्वयं बुनी गयी वह जाल है जिसमें उत्पीड़ित समाज हमेशा उलझा हुआ है। उत्पीड़ित समाज को अपनी मुक्ति के लिए उत्पीड़न के खिलाफ सकारात्मक आवाज उठानी चाहिए। फ्रेरे के शब्दों में – ''उत्पीड़ितों को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू करने में समर्थ होने के लिए यथार्थवादी होना पड़ेगा। उन्हें उत्पीड़न के यथार्थ को ऐसी बन्द दुनिया के रूप में हरगिज नहीं देखना चाहिए, जिससे निकल पाना संभव नहीं है। उन्हें उसे ऐसी अवरोधक स्थिति के रूप में देखना चाहिए जिसे वे बदल सकते हैं। यह बोध आवश्यक है; किन्तु अपने आप में मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। इस बोध को मुक्तिदायी कर्म के लिए प्रेरित करने वाली शक्ति बनना आवश्यक है।..... उत्पीड़ित लोग जिस अंतर्विरोध में फँसे हुये हैं; उसे वे तभी दूर कर सकते हैं; जब उनका यह बोध उन्हें अपनी मुक्ति के संघर्ष में प्रवृत्त करें।''

फ्रेरे ने उत्पीड़ित समाज की मुक्ति के लिए जो विचार प्रकट किये, वे यथार्थवादी जरूर है; परन्तु उसमें उत्पीड़न से मुक्ति का स्वप्न भी पलता रहता है। फ्रेरे के शब्दों में– ''एक ऐसे व्यक्ति के बतौर जो अन्याय की उस मौजूद दुनिया से असंतुष्ट है, जहाँ 'व्यवहारवादी' विमर्श का नुस्खा यही होता है कि परिस्थिति के अनुरूप बस ढल जाओ, मुझे कल की तरह ही आज 'कार्यनीति' और रणनीति के परस्पर रिश्ते के बारे में जरूर सचेत बने रहना चाहिए। दुनिया कम

बदसूरत हो, इसके लिए संघर्षरत कार्यकर्ताओं से यह माँग करना, एक बात है कि, वे सबसे पहले यह जरूरत पूरी कर लें कि उनकी 'कार्यनीति' उनकी अपनी रणनीति लक्ष्यों और सपनों का खण्डन न करती हो; दूसरी, यह कि रणनीतिक सपने को साकार करने के रास्ते पर बढ़ने वाली कार्यनीति ठोस इतिहास में टिकी हो; उसके भीतर ही उस पर अमल हो, उसे साकार किया जाय, और इसलिये यह माँग कि वह बदलती रहे; बिल्कुल दीगर बात है। महज यह कह देना कि आप का काम है बस 'सपने देखना'। सपने देखना न सिर्फ एक जरूरी राजनीतिक क्रिया है; बल्कि वह मनुष्य होने के ऐतिहासिक सामाजिक तरीके का अभिन्न अंग भी है। वह उस मानवीय स्वभाव का अंग है जो इतिहास में हमेशा होने की ओर अग्रसर रहता है।''

''इतिहास बनाने की प्रक्रिया में खुद के बनने और फिर–फिर बनने के दौरान एक कर्ता और क्रिया–वस्तु के बतौर, व्यक्तियों के बतौर, अपना अस्तित्व अलग से दर्ज कराने वाले न कि दुनिया के अनुरूप शुद्ध रूप से ढल जाने वाले इंसान के बतौर – हमें उस सपने के साथ सफर के मुकाम पर पहुँचना चाहिए, जो खुद इतिहास की चालक शक्ति है। सपनों के बगैर बदलाव नहीं होता, जैसा कि आशा के बगैर सपना नहीं होता है, इसलिए 'उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र' के दिनों से लगातार मैं इस पर जोर देता रहा हूँ; अधिकाधिक असह्य होते जाते वर्तमान की भर्त्सना और उस भविष्य की उद्घोषणा के बीच को तनाव से अलग जिसे स्त्री–पुरूषों द्वारा राजनीतिक, सौन्दर्यात्मक और नैतिक तौर पर रचा जाना है; किसी प्रमाणिक यूटोपिया का होना नामुमकिन हैं। ये (भर्त्सना) और (उद्घोषणा) यूटोपिया के अन्दर अन्तर्निहित रहती है, और पूर्व घोषणा वाले भविष्य के बनकर तैयार हो जाने पर भी वह उन दोनों के बीच तनाव को मरने नहीं देता हैं। कल तक जो भविष्य के रूप में मौजूद था; आज वह नया वर्तमान हो गया है और फिर एक नये सपने का अनुभव गढ़कर तैयार किया जाता है। इतिहास के पहिये नहीं थमते, वह मरता नहीं है उसके उलट वह आगे बढ़ता रहता है।''

फ्रेरे का विचार है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम समस्या का एक खाका तैयार करना चाहिए, जिसमें केवल वर्तमान ही नहीं; अपितु एक सुन्दर भविष्य के पूर्ववत स्वरूप को बदल कर फिर नये सिरे से उसे शुरू करना अपने में एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करने से पहले एक क्रान्तिकारी योजना का निर्माण आवश्यक है। यह योजना क्रान्तिकारी समूहों द्वारा गठित हो, तथा इसका आचरण दक्षिण पंथी आचरण से भिन्न हो।

''क्रान्तिकारी यूटोपिया का झुकाव स्थिरता के बजाय गतिशीलता की ओर होता हैं, मृत्यु की बजाय जीवन की ओर होता है। मनुष्य की सृजनशीलता की चुनौती के रूप में भविष्य की ओर होता है, न कि वर्तमान के दोहराव के रूप में भविष्य के ओर; विकृत अधिकार भावना की बजाय कर्ताओं की मुक्ति के रूप में प्यार की ओर होता है; ठंढी अमूर्तता के बजाय जीवन संवेदना की ओर होता है, भेड़िया–धसान की बजाय मिलजुलकर साथ रहने की ओर होता है; मूकता की बजाय संवाद की ओर होता है; कानून व्यवस्था की बजाय आचरण की ओर होता हैं; अकर्मण्यता के लिए संगठित होने की बजाय ऐसे मनुष्यों की ओर होता है; जो कर्म के लिए सोच विचार कर अपने को संगठित करे; रूढ़िगत संकेतों की बजाय रचनात्मक और सम्प्रेषणीय भाषा की ओर होता है; फालतू नारों की बजाय चिंतनशील चुनौतियों की ओर होता है; और थोपे जाने वाले मिथक की बजाय ऐसे मूल्यों की ओर होता है जिन्हें जिया जाता है।''

फ्रेरे का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बहुत व्यापक एवं सर्वांगीण है। वे शिक्षा की परम्परागत बैंकीय अवधारणा का विरोध करते हुए शिक्षा की समस्या–उठाऊ व्यवस्था का समर्थन करते हैं जिसमें विद्यार्थी केवल पढ़ना–लिखना ही नहीं सीखता बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि से प्रश्न भी पूछना सीखता है। फ्रेरे मानते हैं कि साक्षरता का कोई अर्थ तभी है जब निरक्षर व्यक्ति दुनिया में अपनी स्थिति, अपने काम और इस दुनिया में बहुत्व लाने की अपनी क्षमता को लेकर सोचने लगे, यही चेतना है। फ्रेरे ऐसी शिक्षा के सर्जक हैं, जो समाज की विकृतियों के प्रति मौन न रहकर प्रतिक्रिया करती है। फ्रेरे के शैक्षिक विचार ने केवल ब्राजील में ही नहीं, अपितु, सम्पूर्ण विश्व में अपनी छाप छोड़ी। स्कूल से बाहर एवं निरक्षरों के बीच उन्हीं की भाषा एवं परिवेश को आधार मानकर जिस शिक्षा प्रणाली का उन्होंने विकास किया, उससे उत्पीड़ितों में आत्म विश्वास का संचार हुआ। फ्रेरे ने निरक्षरों को साक्षर कर उन्हें 'मत का अधिकार' दिलाने का सफल प्रयास किया। उनका मानना था कि शिक्षा का आरंभ शिक्षक–छात्र अन्तर्विरोध का समाधान करते हुये होना चाहिए परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब अन्तर्विरोध के दोनों ध्रुवों को मिला दिया जाय। शिक्षा का ऐसा स्वरुप विकसित हो जिसमें छात्र और शिक्षक के बीच परस्पर संवाद एवं संप्रेषण हों। शिक्षक, एक 'छात्र' और छात्र, एक 'शिक्षक' बनकर एक ऐसे समाज का निर्माण करे जिसमें भय, भूख और भ्रष्टाचार पर अंकुश पाया जा सके। अपने तार्किक विचारों से फ्रेरे ने शिक्षक और छात्र के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास किया। उनका उद्देश्य था कि शिक्षा सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्रांति का मूल आधार है; अतः यह समाज के सबसे वंचित व्यक्ति तक अवश्य पहुँचनी चाहिए।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पुश्पित और पल्लवित करने में प्रख्यात शिक्षाशास्त्री पॉलो रिगेलस नेवेस फ्रेरे के शैक्षिक दर्शन एवं मूल्यों का वर्तमान समय में महत्व है जिनको आत्मसात् करने से भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन आ सकता है। फ्रेरे के शैक्षिक दर्शन और मूल्यों को आत्मसात् कर भारतीय परम्परा के सूक्ति वाक्य 'सा विद्या या विमुक्तये' को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है जिससे शिक्षक–छात्र सम्बन्धों में मधुरता आ सके तथा छात्रों में आलोचनात्मक बोधशक्ति का विकास हो सके जिससे वे एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

- अल्तेकर, ए.एस. (1976): प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, मनोहर प्रकाशन, वाराणसी।
- अग्निहोत्री, आर.: आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्यायें और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- अग्रवाल बी.बी. (1998): आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- अग्रवाल, एस.के.: शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त, राजेश पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- अवस्थी, ए.वी.एस. (1982): भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियाँ, हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

- इलिच, आई. (1989): पाठशाला भंग कर दो (अनु.) इन्दु प्रकाश कानूनगो, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- उपाध्याय, बी. (1966): भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी।
- ओड, एल.के. (2008): शिक्षा साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- कपिल एच.के. (1999): अनुसंधान विधियाँ (व्यवहारिक विज्ञानों में) एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- कबीर, एच. (1962): भारतीय शिक्षा दर्शन (अनु.) श्री कृष्ण चन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- फ्रेरे, पी. : पेडागॉजी ऑफ अप्रेस्ड प्रिन्टेस हाल इण्डिया, नई दिल्ली।
- सिंह, डी. (2000): गांधीवाद को विनोबा की देन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।
- सिंह, एन. (2004): सांस्कृतिक शिक्षा और लोकतन्त्र (अनु0) चन्द्रभूषण ग्रंथ, नई दिल्ली।
- सुखोम्लीन्सकी, वी. (2004): खुशियों का स्कूल, अरूण प्रकाशन, दिल्ली।
- शर्मा आर.ए. (2005): शिक्षा अनुसंधान, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।
- शर्मा, आर.ए. एवं चतुर्वेदी एस.: गुरू, शिष्य एवं ज्ञान, आर0लाल बुक डिपो मेरठ।
- श्रीवास्तव, एस.एल. (1995): दर्शन के मूल प्रश्न, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल।